

सम्पादक के नाम

सीमा के दोनों ओर हैं धर्मांध तालिबानी

पाकिस्तान में आबादी का एक बड़ा तबका ईश निंदा के आरोप का शिकार आसिया नाम की मासूम लड़की के खून का प्यासा हो रहा है। उसे निर्दोष करार देनेवाले जज की हत्या के लिए उनके झाड़वर, गार्ड और उनके घर के लोगों को भी उकसाया जा रहा है। उसके वकील को रातोंरात नीदरलैंड में शरण लेनी पड़ी है। उसके पति और घर के लोग भी संकट में हैं।

आसिया के लिए आवाज उठाने के कारण पूर्व मंत्री शहबाज भट्टी और पंजाब के पूर्व गवर्नर सलमान तसीर की हत्या की जा चुकी है। हत्यारे एक बड़ी आबादी की नज़र में इस्लाम के प्राणरक्षक हैं।

पाकिस्तान में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो आसिया को निर्दोष मानते हैं। लेकिन एक की भी सच बोलने की हिम्मत नहीं है। ऐसा करने पर वे मारे तो जाएंगे ही, उनके हत्यारे राष्ट्रीय हीरो बन जाएंगे।

आज फौज कठमल्लों के सामने घुटनों के बल रेंग रही है। इसी फौज ने इन्हें पाला पोसा था। इमरान खान ने नाक रगड़ते हुए इनसे समझौता किया है।

पाकिस्तान एक दिन में ऐसा नहीं बन गया। पहले मजहब को ईसान की पहचान बनाया गया। फिर उसे एक मुल्क का अभिमान बनाया गया। यह सब चौतरफा लूट खसोट से परेशान अवाग को चुप करने के लिए किया गया।

अब अवाग के पास धर्म के सिवा कुछ बचा नहीं है। इसलिए सरकार को और सेना को भी मजहब की बलिबेदी पर चढ़ना होगा।

हम चाहें तो आज के पाकिस्तान में कल के भारत का अक्स देख सकते हैं। यहां भी धर्म के सामने सुप्रीम कोर्ट, संविधान और देश तक को अप्रासंगिक बताया जा रहा है। संविधान की हत्या के लिए धर्मांध जारी हो रहे हैं। एक बड़ी जमात इन सबका समर्थन कर रही है। यहां भी धर्म को व्यक्ति की पहचान और देश का अभिमान बनाया जा रहा है।

बस एक कदम और बढ़ाने की देर है...

- आशुतोष कुमार

दिवाली में भी खरीद नहीं

अभी बाजार से होकर आया हूँ, लग ही नहीं रहा कि ये दिवाली का मार्केट है। भीड़ है लेकिन खरीद नहीं, दुकानदार से बात कीजिए तो फीकी सी हँसी हँस कर रह जाता है, पहले थोक व्यापारियों का धंधा बिगड़ा, अब रिटेल वाले भी रो रहे हैं।

ईद और श्लोकबंधन की खरीद कमजोर रहने के बाद व्यापारियों को दिवाली की खरीद पर बड़ी उम्मीद थी, लेकिन अब दिवाली का बाजार देख कर भी व्यापारी खून के आँसू रो रहा है। सब तरफ लोग एक ही बात कर रहे हैं कि नोटबन्दी जीएसटी के दुष्परिणाम अब देखने में आ रहे हैं।

जीएसटी आने के बाद बड़े व्यापारियों को लग रहा था कि रिटर्न फाइल करने की व्यवस्था के कारण हर महीने पेमेंट मिल जाएगा। लेकिन अब उल्टा हो रहा है, अब व्यापारी छ छ महीने भी पेमेंट नहीं कर रहे हैं। पहले 100-120 दिन के स्थान पर अब 200-225 दिन पर भी पेमेंट नहीं मिल रहा है।

दिवाली पर सबसे ज्यादा कपड़े जुते इलेक्ट्रॉनिक सामानों आदि की खरीद होती है लेकिन कपड़ा व्यापारी बता रहे हैं कि जितनी अपेक्षा थी उससे 30 प्रतिशत व्यापार कम है। एक बड़े इलेक्ट्रॉनिक व्यापारी बता रहे थे कि हम नवरात्र में से दीवाली तक 35 लाख रूपए तक का सामान बेच देते थे। इनमें 70 प्रतिशत टीवी, 20 प्रतिशत फ्रिज, बाकी 10 प्रतिशत में सभी उत्पाद आ जाते थे लेकिन इस बार बिक्री का आंकड़ा तीन लाख रूपए भी नहीं पहुंचा है।

दरअसल ऑनलाइन खरीदी बढ़ने स्थानीय अर्थव्यवस्था चरमरा गई है, क्योंकि पैसा आपके शहर व गांव में नहीं दूसरे देशों में जा रहा है। यदि स्थानीय स्तर पर खरीद होती है तो एक व्यापारी दूसरे से खरीदता है और पैसा घूमता रहा है। इसके चलते सभी अपना-अपना मुनाफा कमाते हैं अब सब ठप पड़ गया है ऊपर से नोटबन्दी और जीएसटी ने व्यापारियों का आत्म विश्वास ही खत्म कर दिया है।

पहले लिखा था कि नोटबन्दी और जीएसटी इसलिए लायी गयी ताकि देश के छोटे व्यापार उद्योग करने वालों का धंधा बढ़े मल्टीनेशनल के हाथ में चला जाएगा, दुर्भाग्य से यह बात सच होते हुए देख रहा हूँ।

- गिरीश मालवीय

खबर (दार) झरोखा

डॉ. पंकज श्रीवास्तव

‘वंशवादी’ नेहरू ने इंदिरा को नहीं, सरदार पटेल की बेटी को संसद भेजा था !

14 नवंबर, 2017 को जवाहर लाल नेहरू के जन्मदिन पर छपे इस लेख को आज यानी 31 अक्टूबर 2018 को फिर ‘उपराया’ जा रहा है ताकि ‘स्टैचू ऑफ लिबर्टी’ के लोकार्पण के दौरान उड़ाई जाने वाली धूल आपके विवेक को न ढँक ले। ‘नेहरू और पटेल विरोधी थे’ या कि ‘नेहरू ने सदैव पटेल को नीचा दिखाया’ जैसी तथ्यहीन बातें जब भारत के प्रधानमंत्री के श्रीमुख से निकल रही हों तो सच के दामन को मजबूती से पकड़े रहने की दरकार है-संपादक

रेंद्र मोदी की बीजेपी को इसके लिए धन्यवाद जरूर देना चाहिए कि उसने इतिहास में लोगों की दिलचस्पी नए सिरे से पैदा की। बीजेपी और संघ के प्रचारतंत्र ने नेहरू को विलेन बनाने के लिए जैसा अविश्वसनीय अभियान चलाया, उसने लोगों को मजबूर किया कि वे हकीकत का पता करने के लिए व्हाट्सएप और फेसबुक जैसे सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म से उतर कर किताबों की धूल झाड़ें।

संघ संप्रदाय ने पटेल और सुभाष बोस का इस्तेमाल हमेशा नेहरू को निशाना बनाने के लिए किया। कुछ ऐसे अंदाज़ में जैसे कि जैसे उनमें कोई निजी दुश्मनी थी। लेकिन जब आप इतिहास के पन्नों से गुज़रते हैं तो पता चलता है कि तमाम विषयों पर मतभेद के बावजूद उनमें एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना में कोई कमी नहीं थी। पटेल ने खुद लिखा है कि वे ‘नेहरू के वफादार सिपाही हैं’ और सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज में ‘नेहरू ब्रिगेड’ की स्थापना की थी।

इन दिनों, खासकर गुजरात चुनाव को ध्यान में रखते हुए लगातार सोशलमीडिया में ऐसी कहानियाँ प्रचारित की जा रही हैं जिनमें कहा जा रहा है कि पटेल की मौत के बाद उनके बच्चों का कोई खूयाल नहीं रखा गया। उन्होंने बड़े दुर्दिन देखे। तमाम सच्चे-झूठे किस्से प्रचारित किए जा रहे हैं जिसके निशाने पर पटेल विरोधी ‘वंशवादी’ नेहरू हैं, जिन्होंने अपने खानदान को राजनीति में आगे बढ़ाया।

आखिर सच्चाई क्या है ?

सच्चाई यह है कि वंशवादी नेहरू ने अपने जीते जी कभी इंदिरा गाँधी को संसद का मुँह नहीं देखने दिया, जबकि पटेल की बेटी को लगातार संसद भेजा। (भेजा का अर्थ यही है कि उन्हें कॉंग्रेस का टिकट देकर चुनाव में जितवाया।)

इंदिरा गाँधी, स्वतंत्रता सेनानी थी, उन्हीं के बीच पत्नी बढ़ी थीं। जब नेहरू प्रधानमंत्री बने तो उनकी सहायक के रूप में लगातार काम करती रहीं, लेकिन नेहरू ने उन्हें सांसद या मंत्री बनाने के बारे में नहीं सोचा। 1959 के दिल्ली अधिवेशन में वे कॉंग्रेस की अध्यक्ष जरूर चुनी गई थीं, लेकिन 1960 में ही इस पद पर नीलम संजीव रेड्डी आ गए थे। 1964 में नेहरू की मौत के बाद कॉंग्रेस ने इंदिरा गाँधी को राज्यसभा भेजा। इस तरह वे पहली बार सांसद बनीं। राज्यसभा को इस ‘गूंगी गुड़िया’ को कॉंग्रेस दिग्गजों ने प्रधानमंत्री बनाया था, न कि नेहरू ने।

मणिबेन अपने पिता सरदार पटेल के लिए उसी तरह थीं जैसे कि इंदिरा, नेहरू के लिए। वे सरदार पटेल के साथ साथे की तरह रहती थीं। पटेल की मृत्यु के बाद उनके दुख को नेहरू से ज़्यादा कौन समझ सकता था। लिहाज़ा 1952 के पहले ही आम चुनाव में ही नेहरू जी ने उन्हें कॉंग्रेस का टिकट दिलवाया। वे खेड़ (दक्षिण) लोकसभा क्षेत्र से सांसद बनीं। 1957 में वे आणंद लोकसभा क्षेत्र से चुनी गईं। महागुजरात आंदोलन के तल्खी भरे दिनों के बीच 1962 में वे स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार से लोकसभा चुनाव हार गईं। लेकिन 1964 में उन्हें कॉंग्रेस ने राज्यसभा भेज दिया जहाँ वे 1970 तक रहीं। वे 1953 से 1956 के बीच गुजरात प्रदेश कॉंग्रेस कमेटी की सचिव और 1957 से 1964 के बीच उपाध्यक्ष रहीं। इस तरह नेहरू के रहते मणिबेन को कॉंग्रेस में पूरा मान-सम्मान मिला

सरदार पटेल के बेटे डब्लूभाई पटेल भी राजनीति में सक्रिय थे। वे बाम्बे म्युनिस्पल कारपोरेशन में कॉंग्रेस के नेता रहे मेयर भी बने। 1957 में वे कॉंग्रेस की ओर से लोकसभा चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे थे, लेकिन कुछ मतभेदों की वजह से वे स्वतंत्र पार्टी में चले गए। लेकिन वे कॉंग्रेस के खिलाफ लोकसभा चुनाव लड़ने को तैयार नहीं हुए। 1958 में वे राज्यसभा गए जहाँ मृत्युपर्यंत यानी 1973 तक रहे।

यानी एक समय ऐसा भी था जब सरदार पटेल के बेटे और बेटी, दोनों ही एक साथ लोकसभा और राज्यसभा में थे। भाई-बहन के लिए ऐसा संयोग ‘वंशवादी नेहरू’ ने ही निर्मित किया था जिन्होंने अपनी बेटी इंदिरा को जीते-जी कॉंग्रेस का टिकट नहीं मिलने दिया। नेहरू के बाद लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने थे, न कि इंदिरा गाँधी।

ऐसा ही कुछ मामला नेता जी सुभाषचंद्र बोस को लेकर भी है। लगातार दुष्प्रचार किया गया कि सुभाष बोस से जुड़ी ‘फाइलों’ में ऐसी गोपनीय बातें हैं जिससे नेहरू शर्मसार हो सकते हैं, इसलिए उन्हें सार्वजनिक नहीं किया जाता। यह बात भुला दी गई कि दोनों ही कॉंग्रेस के समाजवादी खेमे के नेता थे। कोई निजी मतभेद नहीं था। सुभाषचंद्र बोस की ‘सैन्यवाद प्रवृत्ति’ को गाँधी और उनके अनुयायी उचित नहीं मानते थे। नेहरू भी उनमें थे। लेकिन परस्पर सम्मान ऐसा कि जब सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज बनाई तो एक ब्रिगेड का नाम नेहरू के नाम पर रखा। गाँधी जी को ‘राष्ट्रपिता’ का संबोधन भी नेता जी ने ही दिया था।

बहरहाल, मोदी जी के प्रधानमंत्री बनने के बाद एक बार फिर ‘बोस फाइल’ का हल्ला मचा। जनवरी 2016 में कई फाइलें सार्वजनिक की गईं तो जो सामने आये वह प्रचार से बिलकुल उलट था। पता चला कि नेहरू ने सुभाष बोस की, विदेश में पल रही बेटी के लिए हर महीने आर्थिक मदद भिजवाने की व्यवस्था की थी।

इन गोपनीय फाइलों से खुलासा हुआ कि ‘अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटी’ (एआईसीसी) ने 1954 में नेताजी की बेटी की मदद के लिए एक ट्रस्ट बनाया था, जिससे उन्हें 500 रुपये प्रति माह आर्थिक मदद दी जाती थी। दस्तावेजों के मुताबिक, 23 मई, 1954 को अनिता बोस के लिए दो लाख रुपये का एक ट्रस्ट बनाया गया था। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री बी. सी. रॉय उसके ट्रस्टी थे।

नेहरू द्वारा 23 मई, 1954 को हस्ताक्षरित एक दस्तावेज के अनुसार, डॉ. बी. सी. रॉय और मैंने आज विषया में सुभाष चंद्र बोस की बच्ची के लिए एक ट्रस्ट डीड पर हस्ताक्षर किए हैं। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने के लिए मैंने उनकी मूल प्रति एआईसीसी को दे दी है।

एआईसीसी ने 1964 तक अनिता को 6,000 रुपये वार्षिक की मदद की। 1965 में उनकी शादी के बाद यह आर्थिक सहयोग बंद कर दिया गया। यह मत समझिए कि तब 500 रुपये महीने कोई छोटी रकम थी। बड़े-बड़े अफसरों को भी इतना वेतन नहीं मिलता था।

गाय नहीं भैंस के दूध ने दी मजबूती, पाखंडी सन्यासी न पढ़ते हैं न पढ़ने देते हैं- काँचा अइलैय्या

‘इन ज्ञान विरोधियों ने मेरी किताबों को पढ़ा ही नहीं, जिन्होंने किताबों को सिलेबस से निकालने की बात की। तुम मेरी किताबें सिलेबस से निकालोगे, तो हज़ारों लोग मेरी किताबें सड़कों पर पढ़ेंगे।’

काँचा अइलैय्या

मेरे नाम के आगे ‘शेफर्ड’ लगा है, जिसका अर्थ होता है ‘चरवाहा’, ये कहते हैं कि ये नाम ईसाई नाम है। ये थोड़ा भी पढ़ते-लिखते नहीं, मेरे पूर्वज भी चरवाहे थे, मैं भी वही हूँ। अगर ये पढ़ने लिखने वाले होते, तो कभी किताबों पर बैन नहीं लगाते। ये ज्ञान विरोधी लोग हैं, जो मुल्क का नुकसान कर रहे हैं। हम शूद्र लोगों ने काम कर करके ही मुल्क को बनाया है, जबकि दो चार सवर्ण जातियों ने बिना कोई काम किए परजीवी की तरह बस खाया है। इसीलिए हमारा मुल्क इतना पीछे हो गया। अब ये हमारे सवालों व विचारों को भी मिलना चाहते हैं, लेकिन ये सफल नहीं होंगे।’

मशहूर सामाजिक चिंतक काँचा अइलैय्या दिल्ली विश्वविद्यालय में 3 नवंबर को पब्लिक मीटिंग में उसी अंदाज़ में खरी बातें कर रहे थे जिसके लिए वे खास मशहूर हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में शैक्षणिक मामलों की स्थायी समिति ने उनकी तीन किताबों

को पाठ्यक्रम से हटाने की सिफारिश की है जिसका व्यापक विरोध हो रहा है। इसी क्रम में काँचा अइलैय्या आमंत्रित थे। 24 अक्टूबर को समिति ने दो विवादित प्रस्ताव दिए। पहला यह कि राजनीति विज्ञान विभाग के पाठ्यक्रम में शामिल काँचा अइलैय्या की किताबें ‘व्हाई आई एम नॉट अ हिन्दू’, ‘बफैलो नेशनलिस्म-ए क्रिटीक ऑफ स्पिरिचुअल और ‘पोस्ट हिन्दू इंडिया- अ डिस्कोर्स इन दलित-बहुजन सोशियो स्पिरिचुअल ऐंड साइंटिफिक रिवोल्यूशन’ के पाठ ‘हिन्दू विरोधी’ व ‘भारतीयता विरोधी’ हैं, इसलिए हटा दी जाएँ। दूसरा विवादित सुझाव ये था कि ‘दलित’ शब्द संविधान में नहीं है, इसलिए ‘दलित’ शब्द का अकादमिक प्रयोग वर्जित किया जाए।

‘राइट फॉर सोशल जस्टिस इन डीयू’ द्वारा आयोजित इस प्रतिरोध सभा में काँचा को ‘बैन कल्चर के प्रतिरोध में’ बोलने के लिए आमंत्रित किया गया था। काँचा ने अपनी तीनों किताबों पर तहसील से बात की। उन्होंने ललकार- ‘अगर तुम किताबों को सिलेबस से निकालोगे, तो हज़ारों लोग हाथ में किताबें लेकर सड़कों पर पढ़ेंगे, विचारों को नहीं मारा जा सकता।’ डीयू में आम तौर पर पब्लिक

मीटिंग को संस्कृति नहीं रही है, बावजूद इसके नॉर्थ कैम्पस के गेट नं 4 पर खुले मंच से काँचा को सुनने सैकड़ों की संख्या डीयू के शिक्षक व छात्र तीन घंटे तक जमे रहे। काँचा ने क्रमशः अपनी किताबों पर बात करते हुए कहा- ‘मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ किताब में मैंने बचपन में बच्चे के पैदा होने से लेकर, उसकी सामाजिक निर्मिति, बचपन, विवाह, सामाजिक संबंध, हिन्दू देवी-देवता और हमारे देवी-देवता, दलितीकरण बनाम हिंदुकरण जैसे विषयों पर विस्तार से बात की है। हिन्दुत्व के ठेकेदार संघी लोगों से मैं ये सवाल करता हूँ कि ‘शूद्र’ कभी हिन्दू हो ही नहीं सकता, जिसका दर्शन मैं, समाजशास्त्र और आर्थिक-सामाजिक मनोविज्ञान अपनी किताबों में दे रहा हूँ। मेरी बातें गलत करनी है, तो इनका जवाब देते हुए किताबें लिखो। लेकिन ये ज्ञान विरोधी हैं, वरना किताबों पर बैन न करते। ज उन्हीं ने ‘बफैलो नेशनलिस्म’ किताब में कामगार शूद्र जातियों के बारे में बात करते हुए बताया कि ‘इस मुल्क को गाय का दूध नहीं, भैंस के दूध से मजबूती आई है, लेकिन चूँकि भैंस काली होती है और शूद्रों के साथ जुड़ी है, इसलिए इसकी पूजा नहीं करते। मेरा वश चले तो हर विश्वविद्यालय के गेट पर भैंस लेकर बांध दूँ कि देखो ये इस मुल्क की

मेहनत व कामगार हिम्मत की प्रतीक है। आज जरूरत है कि वैज्ञानिक चेतना के साथ सभी को मुफ्त शिक्षा दी जाए, जबकि ये ज्ञान-विरोधी शिक्षा को ही बर्बाद कर रहे हैं।’

अपनी तीसरी किताब ‘हिन्दुत्व मुक्त भारत’ पर बात करते हुए काँचा ने कहा कि ‘आज मुल्क पर ज्ञान विरोधी, शूद्र विरोधी संघी ताकतों का कब्जा है, इसीलिए यहाँ की ज्ञान-मीमांसा दुनिया के सामने फिसड़ रही। शूद्रों और महिलाओं को कभी पढ़ने नहीं दिया, जबकि यही कामगार लोग हैं। वरना भारत की कोई एक किताब भी प्लेटो, अरस्तू, एडम स्मिथ की तरह दुनिया भर में पढ़ाई जाती। ये सब सन्यासी पाखंडी हैं, जो आज सत्ता में बैठे हैं। इनका विरोध करना देश विरोधी व ज्ञान विरोधी होना नहीं है। इनको कभी समझ नहीं आएगा। न पढ़ते हैं और न पढ़ने देंगे।

इस प्रतिरोध सभा में छात्रों और शिक्षकों की जबरदस्त भागीदारी हुई जिसने दिल्ली विश्वविद्यालय में एक नई परंपरा का आगाज किया है। दिल्ली विश्वविद्यालय में स्थायी समिति के प्रस्ताव के विरोध में राजनीति विज्ञान विभाग ने प्रस्ताव पारित किया कि वे अपने यहाँ पाठ्यक्रम में कोई बदलाव नहीं करेंगे। अंतिम निर्णय विश्वविद्यालय की अकादमिक समिति को करना है। गौरतलब है कि दो वर्ष

पहले ए. के रामानुज के लेख ‘तीन सौ रामायण’ को विभाग के विरोध के बाद हटा दिया गया था, साथ ही नंदीनी सुंदर व अर्चना प्रसाद की आदिवासियों पर लिखी किताबों को ‘नक्सली’ बताकर हटा दिया गया। इसी कड़ी में अब दलित-बहुजन वैचारिक दर्शन व समाजशास्त्रीय विश्लेषण पर आधारित काँचा की किताबों को ‘हिन्दू विरोधी’ बताकर हटाया जा रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय में पहली बार ‘बैन’ की गई किताबों के लेखक का व्याख्यान सुना गया।

स्वाल स्वभाविक है कि दलित, पिछड़े, आदिवासी, अल्पसंख्यक व महिलाओं पर लिखी किताबें विश्वविद्यालयों में नहीं पढ़ी जाएँगी, तो फिर विश्वविद्यालय किस काम के लिए हैं? क्या उनका पाठ्यक्रम सत्ता तय करेगा? डीयू में ये सवाल अब सिर चढ़कर बोल रहा है। 30 और 31 अक्टूबर को इस मुद्दे पर प्रदर्शन हुआ था। ‘संघी सिलेबस नहीं चलेगा, भगवा सिलेबस नहीं चलेगा’ जैसे नारों से परिसर गुँज उठा था। प्रतिबंधित किए जा रहे लेखकों को बुलाकर दिल्ली विश्वविद्यालय के चेतनशील तबके ने साबित कर दिया कि विचारों को पाबंदी से नहीं मारा जा सकता।

- मजदूर मोर्चा ब्यूरो